02 स्कूली सामाजिक विज्ञान का विवादित क्षेत्र

पूनम बत्रा

सामाजिक विज्ञान या सामाजिक अध्ययन?

यह एक सुपरिचित तथ्य है कि एक अध्ययन क्षेत्र की तरह सामाजिक विज्ञान का गठन अपेक्षाकृत हाल में, उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध से, शुरू हुआ। स्कूली विषय की तरह सामाजिक विज्ञान की विषयवस्तु, शिक्षण पद्धतियों और सैद्धान्तिक आधारों का विकास तो और भी बाद में हुआ है। वास्तव में तो, प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूल शिक्षा तंत्रों में सामाजिक विज्ञान को केन्द्रीय स्थान न मिल पाना गम्भीर चिन्ता का विषय रहा है। व्यवस्थित रूप से सामाजिक विज्ञान के विषय विश्वविद्यालय के स्तर पर पढ़ाए जाते हैं। प्राथमिक और माध्यमिक स्तरों पर जिस रूप में इन्हें पढ़ाया जाता है उसे आमतौर पर सामाजिक अध्ययन कहा जाता है। सामान्यतया इतिहास, भूगोल और नागरिक शास्त्र मिडिल स्कूलों में पढ़ाए जाते हैं। हाईस्कूलों के विद्यार्थी (मानविकी या कला शाखाओं के अन्तर्गत) राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र या मनोविज्ञान का अध्ययन करते हैं। शायद यही कारण है कि सामाजिक विज्ञान एक सुगठित ज्ञानक्षेत्र की तरह स्कूली पाठ्यक्रम का अंग नहीं बना है। कुछ विद्वानों का तर्क है कि 'सामाजिक विज्ञान की सार्वभौमिक प्रकृति के खिलाफ वैश्विक ताकतों तथा साम्प्रदायिक ताकतों के साथ–साथ क्षेत्रवादी हमलों के परिणामस्वरूप सामाजिक विज्ञानों की प्रकृति सिकुड़कर केवल सामाजिक अध्ययन बनकर रह गई है' (चालम, 2002 :922)। परन्तु एक स्कूली विषय की तरह सामाजिक अध्ययन के शीर्षक पर विशेष अर्थ में दिए जाने वाले जोर को उसके सामाजिक–ऐतिहासिक सन्दर्भ में समझा जाना जरूरी है।

स्कूलों में सामाजिक विज्ञान के नाम पर क्या पढ़ाया जाना चाहिए, इसके सबसे प्रारम्भिक निरूपणों में से एक ऐडगर वैस्ली (1937) के द्वारा दी गई परिभाषा पर आधारित है, जिनकी दृष्टि में 'शैक्षणिक उद्देश्यों के लिए सरल बनाए गए सामाजिक विज्ञान ही सामाजिक अध्ययन हैं।' सामाजिक अध्ययन के आधारों पर विचार करते हुए लॉटन (1981: 36) ने सामाजिक अध्ययन की पाठ्यचर्या की परिभाषा इस प्रकार की थी ''एक ऐसी पाठ्यचर्या जो सामाजिक विज्ञानों तथा अन्य विषयों से चुने गए उपयुक्त ज्ञान और अनुभव के माध्यम से युवाओं को उनके समाज से जोड़कर उन्हें पूर्ण वयस्क मनुष्यों के रूप में विकसित होने में सहायक होती है।'' वे फिर कहते हैं कि यद्यपि व्यक्ति और समाज की आवश्यकताओं की धारणाओं के आधार पर समय तथा सन्दर्भ बदलने के साथ सामाजिक अध्ययन की पाठ्यचर्या के बदलने की सम्भावना रहती है, तथापि इसके तीन लक्ष्यों व्यक्ति की आवश्यकताओं; अकादमिक विषयवस्तु तथा नागरिक शिक्षा, के बीच समन्वय स्थापित किया जाना जरूरी है। अन्य विद्वानों ने सामाजिक अध्ययन की पढ़ाई की आवश्यकता इस कारण से प्रतिपादित की क्योंकि समाज को ऐसे वयस्कों की जरूरत होती है जिन्हें नागरिक की तरह अपने अधिकारों और जिम्मेदारियों का ज्ञान होता है, और सामाजिक अध्ययन इन लक्ष्यों की पूर्ति बेहतर ढंग से कर सकता है। हालाँकि, जैसा रॉस्की का कथन है, ''नागरिकता की शिक्षा पर सामाजिक अध्ययन का कोई एकाधिकार नहीं है। अन्य विषय जैसे कि साहित्य, कला, संगीत, विज्ञान और यहाँ तक कि खेल भी नागरिकता की शिक्षा में योगदान देते हैं''।

बीसवीं सदी के अन्तिम दो दशकों के दौरान शिक्षा में मानववादी मनोविज्ञान के बढ़ते हुए प्रभाव के चलते स्कूली शिक्षा की बच्चों पर केन्द्रित पद्धतियों के विद्यमान प्रतिमानों के साथ नागरिकता की शिक्षा का समन्वय करने के लिए सामाजिक अध्ययन को उपयुक्त क्षेत्र माना जाने लगा। इस ढाँचे में, 'सामाजिक अध्ययन जिस तरह व्यक्ति को अपनी (और दूसरों की) मानवीयता से जुड़ने के लिए आग्रहपूर्वक आमंत्रित करता है वह इसका सबसे प्रभावशाली पहलू बन गया' (विशॉन आदि, 1998)।

> *अधिकांश भारतीय स्कूलों में सामाजिक विज्ञान (जिसे सामाजिक अध्ययन कहा जाता है) को परिभाषित करने वाले कारक हैं: पाठ्यपुस्तक में क्या दिया जाता है और विषय सामग्री को किस तरह प्रस्तुत और व्यवस्थित किया जाता है।*

हाल में इवान्स (2004 :47) ने कुछ विवादों, जिन्हें वे 'सामाजिक अध्ययन की लड़ाइयाँ' कहते हैं, पर विचार करते हुए सामाजिक अध्ययन में पाँच स्पष्ट खेमों को चिन्हित किया है, जिनमें से प्रत्येक का अपना–अपना दर्शन, धारणाएँ और शैक्षणिक पद्धतियाँ हैं। इनमें शामिल हैं: पारम्परिक इतिहासकार जो इतिहास को सामाजिक अध्ययन की धुरी माने जाने का समर्थन करते हैं; वे जो सामाजिक अध्ययन के सामाजिक विज्ञान होने की वकालत करते हैं; सामाजिक दक्षता के हिमायती शिक्षाविद् जो एक सुगमतापूर्वक नियंत्रित, दक्ष समाज रचने की आशा करते हैं; डिअन प्रयोगवादी जो वैचारिक सोच विकसित करने पर ध्यान केन्द्रित करते हैं, तथा सामाजिक रचनात्मकतावादी जो सामाजिक विज्ञान में सामाजिक

अध्ययन को एक अग्रणी रूपान्तरकारी भूमिका में ढालते हैं। इवान्स की दृष्टि में 'विशेष आग्रह वाले समूहों के बीच जो कुछ भी पारस्परिक संघर्ष की तरह शुरू हुआ वह धीरे–धीरे उस प्रगतिशील सामाजिक अध्ययन के खिलाफ युद्ध के रूप में विकसित हो गया जिसने पाठ्यचर्या की वर्तमान और भविष्य की दिशा को अत्यधिक रूप से प्रभावित किया है।' विभिन्न दृष्टिकोणों में समझौता होने के फलस्वरूप एक उदार, सर्वग्राही खेमे का प्रादुर्भाव हुआ, जिसने वैस्ली के विचार को प्रतिध्वनित करते हुए एक व्यापक दृष्टिकोण की वकालत की जो 'सामाजिक अध्ययन' का आशय शैक्षणिक उद्देश्यों की दृष्टि से सरलीकृत, समेकित और रूपान्तरित इतिहास तथा सामाजिक विज्ञानों को मानता है। धीरे–धीरे अनेक देशों में 'प्रगतिशील शिक्षा' के विचार के अन्तर्गत सामाजिक अध्ययन का समेकित दृष्टिकोण, जिसमें इतिहास का भी विलय हो गया, आधिकारिक पाठ्यचर्या बन गई (लेमिंग, 2003)।

स्कूलों में सामाजिक विज्ञान क्या है और क्या होना चाहिए, इसे लेकर बहस जारी है और आगे भी बहसें होती रहेंगी। पर अधिकांश भारतीय स्कूलों में सामाजिक विज्ञान (जिसे सामाजिक अध्ययन कहा जाता है) को परिभाषित करने वाले कारक हैं: पाठ्यपुस्तक में क्या दिया जाता है और विषय सामग्री को किस तरह प्रस्तुत और व्यवस्थित किया जाता है।

भारतीय स्कूलों में सामाजिक विज्ञान शिक्षण का विकास

अन्य नए उभरते हुए राष्ट्रों की तरह उपनिवेशवाद की समाप्ति के बाद भारत में भी सामाजिक विज्ञान का शिक्षण राष्ट्र निर्माण और आधुनिकीकरण के लिए आवश्यक समझी गई जरूरतों से बहुत प्रभावित हुआ। भारत में सामाजिक विज्ञान के उद्भव और उद्देश्य की शुरुआत 'नागरिक की सामान्य शिक्षा में सामाजिक विज्ञान के शिक्षण का स्थान' (यूनेस्को, 1954 : 60) पर हुए सार्थक विचार–विमर्श से मानी जा सकती है। सामाजिक विज्ञान शिक्षा के इस सूत्रबद्ध लक्ष्य पर लगातार दिए गए जोर का प्रतिबिम्ब उन दृष्टिकोणों में झलकता है जो स्वतंत्र भारत के प्रारम्भिक कुछ दशकों में उभरे, और जो साथ ही साथ उस बहस से भी प्रभावित थे जो सामाजिक विज्ञान शिक्षा के महत्व को लेकर नए राष्ट्रों में चल रही थी। इस प्रकार यह माना गया कि नागरिकता के लिए शिक्षा को एक नया अर्थ प्राप्त हुआ और स्कूल को ऐसी शैक्षणिक शक्ति के नाभिकेन्द्र की तरह देखा गया। बाद में इस प्रश्न पर कई दृष्टिकोण उभरे जिनमें राष्ट्र निर्माण पर असंदिग्ध रूप से दिया गया जोर भी शामिल था जिसे स्वतंत्रता के पश्चात बने पहले भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा आयोग की रिपोर्ट (भारत सरकार, 1966) में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया।[1]

स्वातंत्रोत्तर भारत के प्रारम्भिक वर्षों में राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (नेशनल काउंसिल फॉर ऐजुकेशन रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग – एनसीईआरटी) और उसके क्षेत्रीय रूपों के माध्यम से नेहरूवादी ढाँचे का वर्चस्व रहा। अपने शुरुआती वर्षों में एनसीईआरटी ने 'भारत में सामाजिक विज्ञान की स्थिति' पर एक अध्ययन किया।[2] इस अध्ययन से उस समय भारतीय स्कूलों में प्रचलित सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रमों के विभिन्न पहलुओं और कमियों के बारे में अन्तर्दृष्टि प्राप्त हुई। इसके परिणामस्वरूप, कक्षाओं को पढ़ाने वाले शिक्षकों, विषय के विद्वानों और शिक्षक–प्रशिक्षकों के सहयोग से जून 1963 से जून 1964 के बीच चार अखिल भारतीय कार्यशालाएँ आयोजित की गईं। कक्षा 1 से लेकर कक्षा 11 तक के लिए पाठ्यक्रम विवरण विकसित किए गए। इसके आधार पर कक्षा 3 से कक्षा 5 तक के लिए 'राज्य', 'देश', और 'विश्व' की जानकारी देने वाली पाठ्यपुस्तकें तैयार की गईं। कक्षा 6 से 8 तक के लिए इतिहास, नागरिक शास्त्र तथा भूगोल की अलग–अलग पाठ्यपुस्तकें तैयार की गईं (गोयल एवं शर्मा, 1987 :176)।

नागरिकता की शिक्षा का जो विचारसूत्र स्कूलों में सामाजिक विज्ञान को शामिल किए जाने के प्रारम्भिक दौर का आधार था, वह 1975 से लगातार सभी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या दस्तावेजों में भी देखा जा सकता है। परन्तु इन दस्तावेजों का गहराई से किया गया अध्ययन पाठ्यचर्या के इस लक्ष्य में किए गए बारीक भेदों और उसकी आमूल रूप से परिवर्तनकारी व्याख्याओं को उजागर करता है। जहाँ प्रथम पाठ्यचर्या की रूपरेखा (करीकुलम फ्रेमवर्क, 1975) का लक्ष्य सामाजिक विज्ञानों के शिक्षण के द्वारा बड़े हो रहे कल के नागरिकों को समुदाय, राज्य, देश तथा सारे संसार की गतिविधियों में भाग लेने में समर्थ बनाना था, वहीं प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या (नेशनल करीकुलम फॉर ऐलिमैंट्री एण्ड सैकेण्ड्री ऐजुकेशन, एनसीईआरटी, 1988 :5) ने 'अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों के प्रति जागरूक और हमारे संविधान में स्थापित सिद्धान्तों के प्रति समर्पित नागरिक समुदाय' बनाने के लिए सामाजिक विज्ञानों के शिक्षण का निर्णायक महत्व होने पर जोर दिया। इसके एक दशक से भी अधिक समय बाद स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (नेशनल करीकुलम फ्रेमवर्क फॉर स्कूल ऐजुकेशन – एनसीईआरटी, 2000), जो एक नए राजनैतिक शासन के अन्तर्गत बनाई गई थी, ने नागरिकता की शिक्षा को नए सिरे से परिभाषित किया जिसमें 'बुनियादी कर्तव्यों के बोध (और) ...भारतीय होने में गर्व की भावना' विकसित करने के उद्देश्य से 'राष्ट्रीय पहचान को पोषित करने वाली विषयवस्तु' पर स्पष्ट रूप से जोर दिया गया। यह बाद वाला दृष्टिकोण 1975 की पाठ्यचर्या की रूपरेखा का एकदम विरोधाभासी था जिसमें ''संकीर्ण, क्षेत्रीय, उग्र राष्ट्रवादी और

दकियानूसी प्रवृत्तियों को रोकने के लिए...सामाजिक विज्ञानों के शिक्षण से मानवीयता, धर्म निरपेक्षता और लोकतंत्र के मूल्यों को बढ़ावा देने, और एक न्यायोचित वैश्विक व्यवस्था, अधिकाधिक आर्थिक और सामाजिक कल्याण, कम से कम हिंसा और अधिक से अधिक पर्यावरणीय स्थिरता के प्रमुख मूल्यों को हासिल करने के लिए आवश्यक ज्ञान और दृष्टिकोणों को विकसित करने'' का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था (एनसीईआरटी, 1975 :19)।

> *सामाजिक विज्ञान शिक्षा के इस सूत्रबद्ध लक्ष्य पर लगातार दिए गए जोर का प्रतिबिम्ब उन दृष्टिकोणों में झलकता है जो स्वतंत्र भारत के प्रारम्भिक कुछ दशकों में उभरे, और जो साथ ही साथ उस बहस से भी प्रभावित थे जो सामाजिक विज्ञान शिक्षा के महत्व को लेकर नए राष्ट्रों में चल रही थी। इस प्रकार यह माना गया कि नागरिकता के लिए शिक्षा को एक नया अर्थ प्राप्त हुआ और स्कूल को ऐसी शैक्षणिक शक्ति के नाभिकेन्द्र की तरह देखा गया।*

ऐसा ही तीखा विरोधाभास एनसीएफएसई, 2000 में व्यक्त किए गए विचारों और 1988 की पाठ्यचर्या दस्तावेज में भी दिखाई देता है, जिसमें सामाजिक विज्ञान के शिक्षण द्वारा नागरिकों में सामाजिक कौशलों और नागरिक योग्यताओं का विकास करके उन्हें 'सामाजिक और आर्थिक पुनर्निमार्ण के कार्य में भागीदार बनाने' की बात कही गई थी। उसने सामाजिक विज्ञानों को जिस समग्र लक्ष्य के अन्तर्गत स्थान दिया था, वह था: 'शिक्षा को मानव संसाधन विकास का एक ऐसा शक्तिशाली उपकरण बनाना जो वांछित सामाजिक रूपान्तरण में सहायक हो' (एनसीईआरटी, 1988 : 3)।

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा का सबसे हाल में किया गया पुनरावलोकन (एनसीएफ रिव्यू, एनसीईआरटी, 2005), जहाँ एक ओर संविधान में स्थापित मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता को बनाए रखने की आवश्यकता को फिर से दोहराता है, वहीं वह सामाजिक विज्ञानों के शिक्षण के लक्ष्य में मूलभूत परिवर्तन की भी वकालत करता है। पहले तो यह एक 'न्यायसंगत और शान्तिपूर्ण समाज' विकसित करने में सामाजिक विज्ञान के दृष्टिकोण तथा ज्ञान के निर्णायक महत्व को समझाता है, और इस प्रकार शिक्षा में इसकी व्यापक अनिवार्यता को स्वीकार करता है, तथा इस अर्थ में यह 'सामाजिक विज्ञान को शिक्षा के समग्र लक्ष्य के अन्तर्गत (पुनः) स्थापित करता है' जिसकी ओर 1988 की पाठ्यचर्या रूपरेखा में संकेत किया गया था। दूसरे, जो अधिक महत्वपूर्ण है, यह सामाजिक जाँच–पड़ताल को एक ऐसे वैज्ञानिक अभिक्रम की तरह स्थापित करता है जिसे पितृसत्तात्मक ढाँचे को चुनौती देना चाहिए और विद्यार्थियों में 'ऐसी आलोचनात्मक नैतिक और मानसिक ऊर्जा (उत्पन्न करना चाहिए) जो उन्हें सामाजिक ताकतों के प्रति जागरूक बनाए जिनसे इन संवैधानिक मूल्यों को खतरा हो... (और) उनमें से संवेदनशील, जिज्ञासु प्रश्नकर्ता और रूपान्तरकारी नागरिक विकसित करे...' (एनसीईआरटी, 2005 :48) ।

> *भौतिक और प्राकृतिक विज्ञानों (जिनका नवउदारवाद के ढाँचे में प्रबन्धन के अध्ययन के साथ तालमेल बैठता है) के वर्चस्व ने ऐसी आम धारणा निर्मित कर दी है कि सामाजिक विज्ञान अनावश्यक है। इसलिए, एक ऐसे दौर में जब शिक्षा के उपकरणीय लक्ष्यों के द्वारा व्यक्ति को सामाजिकता से पृथक किए जाने का खतरा है, आज स्कूली शिक्षा में सामाजिक विज्ञानों के महत्व को पुनर्स्थापित करना एक बड़ी चुनौती है।*

परन्तु कक्षाओं में अभी भी यह आम धारणा प्रचलित है कि सामाजिक अध्ययन केवल जानकारी प्रदान करता है, और लिखित पाठ्य सामग्री पर अत्यधिक केन्द्रित रहता है जिसे परीक्षाओं के लिए रटकर याद करना आवश्यक होता है। हालाँकि यह दृष्टिकोण उस तरीके के कारण उपजता और बना रहता है जिस तरह सामाजिक विज्ञान के विषय स्कूलों में पढ़ाए जाते हैं, पर यह पाठ्यचर्या विकसित करने वाले अनेक लोगों की सोच पर भी हावी रहता है। मसलन, एनसीएफई, 2000 की यह मान्यता, कि इतिहास की सामग्री में 'काफी कटौती' किए जाने की जरूरत है, इस तर्क से सहमत है कि सामाजिक विज्ञान 'अतीत के बारे में अनावश्यक जानकारी' प्रदान करता है और इसलिए इसे विषयवस्तु की दृष्टि से नागरिक शास्त्र और भूगोल की पाठ्यपुस्तकों में समाहित कर दिया जाना चाहिए। इतिहास के दबाए जाने की विद्वानों ने 'सामाजिक विस्मृति' के एक रूप की तरह चर्चा की है (जैकोबी, 1975), और बीसवीं सदी के तीसरे चतुर्थांश में अमेरिका में होने वाली पाठ्यचर्या सम्बन्धी बहसों में किए गए 'इतिहास की उपेक्षा करने के आह्वान' को 'खुद चिन्तन पर ही आक्रमण' (जिरो, 1981) कहा गया है। इतिहास लेखन में 'सत्य' के दावों पर प्रश्न उठाते हुए मेनन (2010) का तर्क है कि 'समाज को ऐतिहासिक रूप से निर्मित' माने जाने की और 'इतिहास को राजनैतिक हस्तक्षेप के रूप में देखने की' पड़ताल करने की जरूरत है।

सामाजिक विज्ञानों के खिलाफ दूसरा तर्क है कि वे उन 'कौशलों' से रहित होते हैं जो वास्तविक संसार में कार्य करने के लिए आवश्यक हैं। भौतिक और प्राकृतिक विज्ञानों (जिनका नवउदारवाद के ढाँचे में प्रबन्धन के अध्ययन के साथ तालमेल बैठता है) के वर्चस्व के साथ मिलकर इस तर्क ने ऐसी आम धारणा निर्मित कर दी है कि सामाजिक विज्ञान अनावश्यक है। इसलिए, एक ऐसे दौर में जब शिक्षा के उपकरणीय लक्ष्यों के द्वारा व्यक्ति को सामाजिकता से पृथक किए जाने का खतरा है, आज स्कूली शिक्षा में सामाजिक विज्ञानों के महत्व को पुनर्स्थापित करना एक बड़ी चुनौती है।

जैसा कि जिरो (1981) का तर्क है कि, स्कूली पाठ्यचर्या में सामाजिक विज्ञानों के शामिल किए जाने के पक्ष में एक महत्वपूर्ण तर्काधार सामाजिक रूप से गढ़ी गई उन मान्यताओं की जाँच–पड़ताल करने की आवश्यकता है जो पाठ्यचर्या और कक्षा के सामाजिक सम्बन्धों के सरोकारों का आधार होती हैं। सामाजिक विज्ञानों के शिक्षण पर केन्द्रित आधार पत्र (एनसीईआरटी, 2006) स्कूल शिक्षा में सामाजिक विज्ञान की भूमिका में ज्ञानतात्विक बदलाव की सशक्त वकालत करता है। उसका तर्क है कि सामाजिक विज्ञानों की ऐसे सामाजिक, सांस्कृतिक और विश्लेषणात्मक कौशल विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका है जो बढ़ती हुई पारस्परिक निर्भरता वाले आज के संसार से तालमेल बैठाने के लिए, और इसके क्रियाकलापों को संचालित करने वाली राजनैतिक तथा आर्थिक वास्तविकताओं से निपटने के लिए आवश्यक हैं।

स्कूलों में सामाजिक विज्ञानों के शिक्षण में प्रमुख वाद–विवाद

समेकित सामाजिक विज्ञान बनाम अलग विषयों पर जोर

अनेक विद्वानों ने तर्क दिया है कि इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र और अन्य सामाजिक विज्ञान विषयों को उनके अन्तर्निहित मूल्य के लिए पढ़ाया जाना चाहिए। इस दृष्टिकोण में प्रमुख स्थान विषय की प्रकृति और उसकी कार्यप्रणाली का होता है और माना जाता है कि वे ही विद्यार्थियों की उस समाज को समझने में मदद करते हैं जिसमें वे रहते हैं।

सामाजिक विज्ञानों के शिक्षण में समेकित दृष्टिकोण के पक्ष में दिए जाने वाले तर्क बच्चों की संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के साथ सामन्जस्य पैदा करने की आवश्यकता से निकलते हैं, क्योंकि यह जरूरी नहीं है कि बच्चे संसार को अकादमिक विषयों के विभाजनों के माध्यम से देखें।[3] अकादमिक विषयों को ऐसी ऐतिहासिक–सांस्कृतिक रचनाओं की तरह देखा जाता है जिनमें से प्रत्येक की अपनी व्याख्या और दृष्टि होती है। तर्क दिया जाता है कि यह दृष्टि बच्चे के संसार को समग्रता में देखने के 'स्वाभाविक' तरीके पर जबरदस्ती लादी गई हो सकती है। समेकित दृष्टिकोण के पक्ष में दूसरा तर्क यह है कि पारम्परिक अकादमिक विषयों पर सख्ती से अलग–अलग ध्यान केन्द्रित करने पर, उन बहुविषयी ज्ञान क्षेत्रों की उपेक्षा होने का खतरा रहता है जो 'अपेक्षाकृत नए' सामाजिक विज्ञानों से उपजे हैं, जैसे सामाजिक मानव विज्ञान, पर्यावरण शिक्षा, और जनसंख्या अध्ययन, जो प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों से सामग्री लेते हैं।

सामाजिक विज्ञान की समेकित पाठ्यचर्या विद्यार्थियों को समाज के विभिन्न पहलुओं की पारस्परिक निर्भरता और उनके बीच के आन्तरिक सम्बन्धों को समझने में सहायक प्रतीत होती है। सामाजिक विज्ञानों की अवधारणाओं और व्यापक सिद्धान्तों के माध्यम से विशेष प्रश्नों और समस्याओं पर विचार करके और आवश्यकतानुसार विभिन्न विषयों से जानकारियाँ लेकर एकीकरण को हासिल किया जाता है। सामाजिक अध्ययन का यह दृष्टिकोण सबसे पहले अमेरिका में सामाजिक अध्ययन समिति की रिपोर्ट (डन, 1916) में प्रस्तावित किया गया था। इसके बाद इसे 1930 के दशक में हैरॉल्ड रग की पाठ्यपुस्तक शृंखला 'मैन एण्ड हिज़ चेंजिंग सोसाइटी '(मनुष्य और उसका बदलता समाज) से बल मिला। यह तर्क दिया गया कि,'रग का लक्ष्य सामाजिक अध्ययन को उसके विषयवार खण्डों से छुटकारा दिलाना था। उसके दृष्टिकोण से, इसके बजाय पाठ्यचर्या को छात्र का ध्यान तात्कालिक समस्याओं पर केन्द्रित करना चाहिए...जैसे कि निर्बाध पूंजीवाद की अतियाँ, आय और सम्पत्ति का अनुचित वितरण, बेरोजगारी, वर्गसंघर्ष, आप्रवासन, द्रुत सांस्तिक परिवर्तन और साम्राज्यवाद, ये रग की पाठ्यपुस्तक में शामिल प्रसंग थे...और इसका लक्ष्य तत्कालीन समाज और परम्परा के चुने हुए पहलुओं की समालोचना होना चाहिए (लैमिंग, 2003 : 126)।

उस समय के प्रगतिशील शैक्षणिक विचारों, जिनका जोर एक 'अधिक सामूहिक समाज व्यवस्था' निर्मित करने पर था, से जुड़े होने के कारण इस दृष्टिकोण को सामाजिक अध्ययन शिक्षण की पद्धतियों पर लिखी गई पाठ्यपुस्तकों से और भी समर्थन मिला (हंट एण्ड मैटकाफ, 1955/1968)। समेकित पद्धति ने विषयवस्तु का खास सवालों और समस्याओं से तालमेल बैठाने का प्रयास किया। 'जनमुद्दों' को केन्द्र में रखने वाला दृष्टिकोण अमेरिका में 1960 के दशक में हार्वर्ड सोशल स्टडीज प्रॉजेक्ट से निकला (लैमिंग, 2003 :128, में उल्लिखित ऑलिवर एण्ड शेवर, 1966)। इनमें ऐसे अनेक मुद्दे शामिल हो सकते हैं जो आज संसार के सामने हैं, जैसे बढ़ती हुई गरीबी, पर्यावरण प्रदूषण तथा धार्मिक हिंसा। किसी विशेष समस्या या विषय पर ध्यान केन्द्रित करते हुए, विद्यार्थी विभिन्न विषयों के दृष्टिकोणों और विचारों का उपयोग करते हैं। ऐसा तर्क

दिया जाता है कि समस्या के तह में जाने की यह पद्धति विद्यार्थियों को समूचे समाज के बारे में दृष्टि प्रदान करने के लिए उपयोगी है, क्योंकि हर समस्या में जीवन के विविध पहलुओं को किसी खास ढंग से समझना पड़ता है।

> *सामाजिक विज्ञानों के शिक्षण में समेकित दृष्टिकोण के पक्ष में दिए जाने वाले तर्क बच्चों की संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के साथ सामन्जस्य पैदा करने की आवश्यकता से निकलते हैं, क्योंकि यह जरूरी नहीं है कि बच्चे संसार को अकादमिक विषयों के विभाजनों के माध्यम से देखें।*

उसी समय ऑस्ट्रेलिया में मोनाश विश्वविद्यालय ने 1967 में अपनी पाठ्यचर्या विकास परियोजना में एकीकरण को एक भिन्न मोड़ दिया। इस परियोजना में कुछ चुने हुए प्रसंगों को लेकर सामाजिक अध्ययन का एक ऐसी पाठ्यचर्या विकसित की गई जो सामाजिक अध्ययन के 'अधिक नए' विषयों को स्कूली शिक्षा में समाहित करती थी। यह पाठ्यचर्या 'समाज में मनुष्य' को केन्द्रीय सूत्र मानकर रचा गया था। इस दृष्टिकोण ने हर विषय की खास पद्धति को समेकित पाठ्यचर्या में समाहित करने का प्रयास किया। इसमें विभिन्न विषयसूत्रों की पड़ताल करने के दौरान विद्यार्थी 'नौसिखिए सामाजिक वैज्ञानिकों' की तरह काम करते हैं। यह इन मान्यताओं पर आधारित था कि सामाजिक विज्ञान की तकनीकें आँकड़ों के विश्लेषण और उनकी व्याख्या करने के लिए आवश्यक क्षमताओं के विकास में सहायक होती हैं, और यह कि, करने के द्वारा सीखना एक महत्वपूर्ण शैक्षणिक सिद्धान्त था (हंट, 1971)। समेकित पाठ्यचर्या की इस प्रमुख आलोचना को देखते हुए कि यह विद्यार्थियों का सामाजिक विज्ञान के अलग–अलग विषयों की पद्धतियों से परिचय नहीं कराती, मोनाश विश्वविद्यालय के प्रयास विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

पर समेकित सामाजिक विज्ञान पाठ्यचर्या के विचार को भारत में हुई पाठ्यचर्या बहस में कोई विशेष महत्व नहीं मिला है। प्रारम्भिक उत्तर–औपनिवेशिक दौर में वकील (1954) द्वारा सामाजिक विज्ञानों में परस्पर सक्रिय सहयोग का सुझाव दिया गया था। यह तर्क दिया गया था कि सहयोग की इस आवश्यकता को ''किसी विशेष सामाजिक विज्ञान को उपलब्ध ज्ञान की सामग्री के विस्तार के दृष्टिकोण से नहीं देखा जाना चाहिए क्योंकि कई मामलों में अध्ययन के ऐसे पहलुओं जो किसी विशेष सामाजिक विज्ञान में शामिल नहीं होते, का अधिक गहरा विकास दृष्टिकोण और कार्यपद्धति में परिवर्तन पर निर्भर करता है... ।'' तर्क को स्पष्ट करते हुए आगे कहा गया है कि ''यदि व्यक्ति केवल अपने अध्ययन विषय में ही रत रहता है तो ज्ञान के कुछ ऐसे छिपे हुए क्षेत्र हो सकते हैं जो उसे उपलब्ध न हों'' (वकील, 1954 :75)।

'समेकित पद्धति' पर हुई गिनी–चुनी चर्चाओं में से एक का जिक्र ''दस–वर्षीय स्कूल'' के पाठ्यचर्या दस्तावेज (1975) में मिलता है जिसमें इसे प्राथमिक, मिडिल और निचले माध्यमिक स्तर पर सामाजिक विज्ञानों को पढ़ाने के सम्भावित तरीकों में से एक बताया गया है।[4] यह दस्तावेज इस मुद्दे के इर्द–गिर्द होने वाली बहसों की प्रकृति की गहरी समझ दर्शाते हुए आगे कहता है कि इसके लिए विषय–प्रसंगों को चुने जाने के दौरान 'विषय के सामान्य ढाँचे को बनाए रखने और ऐसे तथ्यों, जो किसी विकासशील किशोर के लिए उपयोगी हों, को शामिल करने की सावधानी बरती जा सकती है' (एनसीईआरटी, 1975 : 21)। परन्तु इस दृष्टिकोण को कभी अपनाया नहीं गया और पाठ्यपुस्तकें इतिहास, नागरिक शास्त्र और भूगोल के साथ ऐसे स्वतंत्र विषयों की तरह पेश आती रहीं जिनमें कोई अन्तर्सम्बन्ध नहीं होता। इसके अलावा तीनों विषयों में प्रस्तुत किए गए प्रतिमान भी एक दूसरे से बिलकुल अलग बने रहे। यह बात विशेषकर भूगोल पर लागू होती है जिसकी विषयवस्तु (इतिहास और नागरिक शास्त्र के विपरीत) राष्ट्रवाद पर सत्ताधारी विमर्श से प्रभावित नहीं होती।

> *एनसीएफ, 2005 की दृष्टि में विषयों में पारस्परिक सम्बन्ध जोड़ने वाली सोच विषयसामग्री के प्रस्तुतिकरण में झलकना चाहिए, और इसे एक नए विषय – 'सामाजिक और राजनैतिक जीवन', जो अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, और राजनीति विज्ञान के अध्ययनक्षेत्रों से सामग्री लेता है और पारम्परिक रूप से नागरिक शास्त्र कहलाने वाले विषय की जगह लेता है – में विशेष विषयसूत्रों को प्रस्तुत करने की कोशिश भी की गई है।*

एनसीएफ, 2005 भी मिडिल और हाईस्कूल स्तरों पर विद्यार्थियों को सामाजिक विज्ञानों से जोड़ने में विभिन्न अध्ययन क्षेत्रों की सीमा रेखाएँ बनाए रखने की बात दोहराता है। एनसीएफ, 2005 की दृष्टि में विषयों में पारस्परिक सम्बन्ध जोड़ने वाली सोच विषयसामग्री के

प्रस्तुतिकरण में झलकना चाहिए, और इसे एक नए विषय – 'सामाजिक और राजनैतिक जीवन', जो अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, और राजनीति विज्ञान के अध्ययनक्षेत्रों से सामग्री लेता है और पारम्परिक रूप से नागरिक शास्त्र कहलाने वाले विषय की जगह लेता है – में विशेष विषयसूत्रों को प्रस्तुत करने की कोशिश भी की गई है। प्राथमिक स्तर पर एक विषय पर्यावरण अध्ययन भी विभिन्न विज्ञानों और सामाजिक विज्ञानों से जानकारी लेने वाले प्रसंगों को जोड़कर पेश करने का प्रयास करता है।

शिक्षा और राष्ट्रवाद के लक्ष्य

शिक्षा के सामाजिक सन्दर्भ और शिक्षा के लक्ष्यों से जुड़े प्रश्नों को एक राष्ट्रीय नागरिक समुदाय के विकास के अन्तर्गत सीमित कर दिया गया है। दार्शनिक विमर्शों में अपने को शिक्षा के बारे में वस्तुपरक सर्वव्यापक सत्यों की तलाश तक सीमित रखने की प्रवृत्ति रही है। हॉब्ज़बॉम (1952 : 9) ने तर्क सहित बताया कि किस तरह सारे यूरोप में आधुनिक राष्ट्रराज्यों के आविर्भाव के उपरान्त नौकरशाही व्यवस्था ने शिक्षा पर नियंत्रण करके 'राष्ट्र की छवि और विरासत' का प्रचार किया। उत्तर–औपनिवेशिक भारत में भी शिक्षा, खासकर सामाजिक विज्ञान पाठ्यचर्या, के माध्यम से राष्ट्रीय अस्मिता के निर्माण को बहुत महत्व दिया गया। कोठारी आयोग की रिपोर्ट में आधुनिकता और राष्ट्रवाद को समानार्थी माना गया। राष्ट्रीय विकास के प्रतिमान के अन्तर्गत ही शिक्षा के उद्देश्य परिभाषित किए गए और वे स्कूली शिक्षा के दैनिक आचरण की परिपाटियों में प्रतिबिम्बित हुए। माध्यमिक शिक्षा आयोग (भारत सरकार, 1953), जिसने 1950 के दशक के प्रारम्भ में बच्चे की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं पर और स्कूल के विषयों को बच्चे के एकदम आसपास के वातावरण से जोड़ने पर जोर दिया था, से यह एक स्पष्ट दिशा परिवर्तन था। कृष्णकुमार अपने कोठारी आयोग के विश्लेषण (2001:51) में लिखते हैं, '...एक ऐसे युवा राष्ट्रराज्य, जिसने चार वर्षों के अन्तराल में दो युद्ध लड़े थे और जो राजनैतिक अस्थिरता के दौर से गुजर रहा था, में बच्चे के स्थानीय परिस्थितियों के सन्दर्भ में ज्ञान का पुनर्निमाण करने की स्वतंत्रता के आदर्श के प्रति पहले जैसा धैर्य नहीं था।'[16]

राष्ट्र–निर्माण के वर्षों के दौरान गढ़े गए 'अनेकता में एकता' के ऐतिहासिक आख्यान ने देश की बहुआयामी विरासत को सराहा, और इस तरह यह जनमानस में बैठ गया। धार्मिक समुदायों के सांस्कृतिक संश्लेषण और सद्भावपूर्ण सहअस्तित्व के इतिहास का निर्माण करने का कार्य राज्य ने स्वयं अपने ऊपर ले लिया था। जहाँ 'धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद' की अक्सर कांग्रेस की भीतर विभिन्न राजनैतिक ताकतों ने परीक्षा ली, वहीं इसे हिन्दू दक्षिणपंथ की गम्भीर चुनौती, विशेषकर एनडीए शासन के दौरान इतिहास की पाठ्यपुस्तकों के पुनर्लेखन के चलते, झेलना पड़ी। स्कूलों में पढ़ाया जाने वाला इतिहास का पाठ्यक्रम उग्र विवाद का क्षेत्र बन गया। अक्टूबर, 2002 (एनसीएफएसई, 2000 के उपरान्त) में जारी की गई इतिहास की पाठ्यपुस्तकों ने 'हिन्दू राष्ट्रवाद' का आख्यान प्रस्तुत किया, जिसने भारत के 'हिन्दू' अतीत को महिमामण्डित किया, साथ ही बौद्ध और जैन धर्मों को हिन्दू धर्म के आवरण में समाहित करने और मध्यकालीन इस्लामी शासन को नृशंस बताने का प्रयत्न किया (मार्लेना, 2003)। इतिहास के पाठों पर हुए विवाद ने पाठ्यक्रम सामग्री के चुनाव और प्रस्तुति के मुद्दों तथा स्कूली पाठ्यक्रम की संरचना में विचारधारा और राज्य के अन्तर्सम्बन्धों की जाँच–पड़ताल करने की आवश्यकता को सीधे जनता की निगाह में ला दिया।[5]

शिक्षा के लक्ष्यों और राष्ट्रवाद के नाजुक रिश्ते के महीन भेद तब सामने आए जब संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए) की सरकार ने 2005 में एनसीएफ की समीक्षा करवाई। फलस्वरूप हमने पहली बार देखा कि किसी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या दस्तावेज (एनसीएफ 2005) ने भगवाकरण की प्रक्रिया को निरस्त करने की समीक्षा से आगे बढ़कर स्कूली पाठ्यचर्या को शिक्षक की जायज जिम्मेदारी की तरह ऐसे ढाँचे में स्थापित किया जो समाज और शिक्षा को गहराई से जोड़ता है।

मूल्य तथा पाठ्यचर्या

भारत में 'मूल्यों' पर होने वाला विमर्श पाठ्यचर्या दस्तावेजों में महत्वपूर्ण रहा है। स्वतंत्रता–पूर्व काल में नागरिक शास्त्र के शिक्षण को दी गई प्रमुखता को जारी रखते हुए, 50 के दशक के शुरुआती वर्षों में माध्यमिक शिक्षा आयोग के समय से नागरिक शास्त्र की भूमिका नागरिकों को अपने 'चरित्र की गुणवत्ता' को बेहतर बनाने और 'सही आदर्शों, आदतों और दृष्टिकोण' को आत्मसात करने के लिए प्रशिक्षित करने की रही (जैन, 2004 : 178)। परन्तु दस–वर्षीय स्कूली पाठ्यचर्या रूपरेखा (1975) ने एक अलग दृष्टिकोण अपनाया और 'चरित्र निर्माण तथा मानवीय मूल्यों' के प्रति आग्रहपूर्वक अपनी प्रतिबद्धता जताई।

सामाजिक विज्ञान को एक ऐसे विषय की तरह देखा गया जो 'बच्चों को मानवीय सम्बन्धों,सामाजिक मूल्यों और दृष्टिकोणों के बारे में अन्तर्दृष्टि विकसित करने में सहायता करेगा' (एनसीईआरटी, 1975 : 21)। खासकर नागरिक शास्त्र के दो उद्देश्य माने गए : 'एक सक्रिय और बुद्धिमान नागरिकता' विकसित करना, और साथ ही 'सामाजिक और राजनैतिक संस्थाओं के ढाँचों और कार्यपद्धति की बुद्धिमत्तापूर्ण समझ विकसित करना' (एनसीईआरटी, 1975 : 23)।

इन उद्देश्यों से, बाद के पाठ्यचर्या दस्तावेजों में विद्यार्थियों के मन में निर्दिष्ट मूल्यों को स्थापित करने के बारे में दिए गए स्पष्ट वक्तव्यों का तीखा विरोधाभास दिखाई देता है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, 2000 सामाजिक विज्ञान शिक्षा की भूमिका को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करती है : 'सामाजिक विज्ञान के शिक्षण के माध्यम से अनेक मूल्यों को मन में बैठाया जाना है'। 'भारतीयता' की जिस भावना के बारे में 1988 के दस्तावेज में चर्चा की गई थी, उसकी एनसीएफएसई, 2000 में हिन्दुत्व के एजेण्डे को प्रक्षेपित करने के लिए काफी संकीर्ण ढंग से व्याख्या की गई है और उसे विकृत किया गया है।

> *स्कूलों में सामाजिक विज्ञान शिक्षण की गम्भीर भूमिका का महत्व वैश्विक दुनिया के तात्कालिक सन्दर्भ में और भी बढ़ जाता है जहाँ निजी और राष्ट्रीय पहचानों का अत्यधिक राजनीतिकरण किया जाता है। यह दृष्टिकोण उस नीति–विमर्श के बीच अलग–थलग पड़ जाता है जिसमें एक मानकीकृत पाठ्यचर्या और मूल्यांकन की लादी गई व्यवस्था के द्वारा सामाजिक विज्ञानों के अस्तित्व को ही खतरा पैदा हो गया है।*

राष्ट्रवाद और मूल्यों की शिक्षा का विमर्श सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम के निर्माण में निकट रूप से गुंथा हुआ है। सामाजिक विज्ञान शिक्षण के केन्द्रीय उद्देश्य की तरह, इसके अध्ययनक्षेत्रों की प्रकृति या समाज की समझ को न मानकर, उन मूल्यों को माना जाता है जो राष्ट्रीय पहचान की मजबूत भावना से युक्त एक निष्ठावान नागरिक समुदाय निर्मित करने के लिए आवश्यक हैं। हाल के शोधों ने स्कूली पाठ्यपुस्तकों में राष्ट्रवाद, पहचान और लिंग के बीच के अन्तर्सम्बधों की परतें खोलने का प्रयास किया है (निरन्तर, 2009)। पाठ्यचर्या के नवीनीकरण की यह कवायद संवैधानिक मूल्यों के विशद ढाँचे के अन्तर्गत 'वैज्ञानिक अभिक्रम की तरह सामाजिक जाँच–पड़ताल' को स्थापित करने में और एक 'न्यायपूर्ण और शान्तिपूर्ण समाज' विकसित करने में सामाजिक विज्ञान विषयों के केन्द्रीय महत्व पर नए सिरे से ध्यान केन्द्रित करती है (एनसीएफ, 2005)।

निष्कर्ष

इस लघु निबन्ध में कुछ ऐसी प्रमुख चिन्ताओं और बहसों की एक झलक प्रदान करने का प्रयास किया गया है जिनसे सामाजिक विज्ञान शिक्षक और पाठ्यचर्या का विकास करने वाले का वास्ता पड़ता है। यह इन बहसों में से किसी का भी समाधान करने का प्रयत्न नहीं करता, बल्कि विमर्श को और गहरा बनाने के निवेदन के साथ सिर्फ उन्हें चिन्हित करना चाहता है। स्कूलों में सामाजिक विज्ञान शिक्षण की गम्भीर भूमिका का महत्व वैश्विक दुनिया के वर्तमान सन्दर्भ में और भी बढ़ जाता है जहाँ निजी और राष्ट्रीय पहचानों का अत्यधिक राजनीतिकरण किया जाता है। यह दृष्टिकोण उस नीति–विमर्श के बीच अलग–थलग पड़ जाता है जिसमें एक मानकीकृत पाठ्यचर्या और मूल्यांकन की लादी गई व्यवस्था के द्वारा सामाजिक विज्ञानों के अस्तित्व को ही खतरा पैदा हो गया है। ऐसे मोड़ पर ही मिडिल, माध्यमिक और उच्चतर–माध्यमिक स्तरों के लिए लिखी गई एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकों के कुछ बेहतरीन उदाहरण हमारे सामने आए हैं। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि वह ढाँचा, जो खासतौर से माध्यमिक स्कूली पाठ्यपुस्तकों – जिनमें नागरिक शास्त्र के स्थान पर आने वाली 'सामाजिक और राजनैतिक जीवन' पर पाठ्यपुस्तकें शामिल हैं – की रचना में इस्तेमाल किया गया है, एकलव्य की पाठ्यचर्या की संरचना और पाठ्यपुस्तक लेखन के तीस वर्षों के अनुभव से अनेक विचार और प्रेरणा लेता है।

पारम्परिक सामाजिक विज्ञान शिक्षण, बच्चे के वास्तविक जीवन के अनुभवों का कोई सन्दर्भ दिए बगैर, समाजों और कालों के बारे में सीखने पर जोर देता है। एकलव्य और एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकें इस तरह से अनोखी हैं कि वे सीखने वालों से अपने स्वयं के सामाजिक अनुभवों पर निरन्तर विचार करवाकर उनके सामाजिक संसार को अध्ययन का लक्ष्य और उसकी प्रक्रिया, दोनों बना देती हैं। ये पाठ्यपुस्तकें अनेक प्रकार से उस विभाजन को समाप्त करती हैं जो अक्सर बच्चे और पाठ्यक्रम के बीच खड़ा किया जाता है। वे विषयवस्तु को विकासात्मक दृष्टि से उपयुक्त तरीकों से व्यवस्थित करने, और पाठक को संवादात्मक प्रक्रिया में भागीदार बनाकर उसका अर्थ निर्मित करने के बहुआयामी गतिशील मुद्दों का एक साथ सामना करती हैं। 'सामाजिक विज्ञान के तथ्यों' को सामाजिक जाँच–पड़ताल की प्रक्रियाओं में बदलना नई पाठ्यपुस्तकों का एक प्रमुख मतबूत पहलू रहा है। यह किसी क्रियाकलाप के बारे में विभिन्न दृष्टिकोणों को प्रस्तुत करने, मानकीय स्थिति की वास्तविक अनुभवों से तुलना करने और ज्ञान का निर्माण करने की पद्धतियों के उपयोग का प्रदर्शन करने के द्वारा किया गया है। शिक्षक की स्वायत्ता का उल्लंघन किए बगैर ये पाठ्यपुस्तकें उपयोगी शैक्षणिक अवसरों और विचारों को उपलब्ध कराती हैं। वे सीखने वालों के लिए ऐसे मुद्दों और विचारों से सक्रिय रूप से परिचित होने की सम्भावनाएँ खोलती हैं, जिनसे हो सकता है उनके जीवन का अभी बहुत दूर का नाता हो, पर जो वृहद् सामाजिक यथार्थ के भीतर धीरे–धीरे अर्थपूर्ण होते जाते हैं।

टिप्पणियाँ

1. इसे कोठारी आयोग की रिपोर्ट के नाम से भी जाना जाता है।
2. गोयल एवं शर्मा (1987) में उल्लिखित।
3. प्लाउडन रिपोर्ट ने गौर किया कि 'बच्चों का सीखना विषयों की श्रेणियों में सही–सही नहीं बैठता'; डीईएसए 1967 : 203 पैनेलॉपी हार्नेट (2004) में उल्लिखित।
4. दस–वर्षीय स्कूल के लिए पाठ्यक्रम : एक रूपरेखा (द करीकुलम फॉर द टैन–ईअर स्कूल : ए फ्रेमवर्क – एनसीईआरटी, 1975) की सिफारिश थी कि–सामाजिक विज्ञानों को कक्षा 1 तथा 2 में पर्यावरण के अध्ययन के हिस्से की तरह, और अगली कक्षाओं में सामाजिक अध्ययन के स्वतंत्र विषय की तरह पढ़ाया जाए। जहाँ पर्यावरण अध्ययन में कक्षा 1 तथा 2 में प्राकृतिक तथा सामाजिक, दोनों पर्यावरण शामिल रहेंगे, प्राथमिक स्तर पर सामाजिक विज्ञान की बजाय 'सामाजिक अध्ययन' नाम उपयोग करना अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि यह एक विस्तृत और मिलाजुला अध्ययनक्षेत्र निरूपित करता है। (पृष्ठ 20)।
5. साम्प्रदायिकीकरण के मुद्दे पर एनसीएसईए 2000 की समालोचना के लिए सहमत के प्रकाशन ये देखें : अगेन्स्ट कम्यूनलाईज़ेशन ऑफ एजुकेशन (2002), सैफरन एजेण्डा इन एजुकेशन : ऐन एक्सपोज़ (2001) तथा द असॉल्ट ऑन हिस्ट्री (2000); राजस्थान की पाठ्यपुस्तकों की समीक्षा के लिए देखें दिगन्तर (2007)।

References

1. Chalam, K. S. (2002). 'Rethinking Social Sciences'. In Economic and Political Weekly Commentary. 915 March, 2002: 921922
2. Digantar. (2007). Various articles in Shiksha Vimarsh: Shaishik Chintan Avam Samvad Ki Patrika. JanuaryFebruary. Jaipur: Digantar
3. Dunn, A. W. (1916). The Social Studies in Secondary Education. Report of the Committee on Social Studies. Commission on the Reorganization of Secondary Education. Washington. DC: National Education Association
4. Evans, R. W. (2004). The Social Science Wars: What Should We Teach the Children? New York: Teachers College Press
5. Hobsbawm, E. (1992). Nations and Nationalism Since 1780: Program, Myth, Reality. Cambridge: Cambridge University Press
6. Giroux, H. (1981). Ideology, Culture and the Process of Schooling. London: The Falmer Press
7. Goel, B. S. & Sharma, J. D. (1987). A Study of the Evolution of The Textbook. New Delhi: NCERT
8. Government of India. (1953). Secondary Education Commission Report. (1952-53). New Delhi: Ministry of Education
9. Government of India. (1966). Education and National Development. Report of the Education Commission. (196466). New Delhi: Ministry of Education
10. Hunt, F. J. (Ed.). (1971). Social Science and the School Curriculum: A Report on the Monash Project. Sydney, Australia: Angus and Robertson
11. Hunt, M. P. & Metcalf, L. E. (1955 & 1968). Teaching High School Social Studies: Problems in Refl ective Thinking and Social Understanding. New York: Harper and Row
12. Jacoby, R. (1975). Social Amnesia. New York: Beacon Press
13. Jain, M. (2004). 'Civics, Citizens and Human Rights Civics Discourse in India'. In Contemporary Education Dialogue. 1(2): 165198
14. Kumar, K. (2001). Prejudice and Pride: School Histories of the Freedom Struggle in India and Pakistan. New Delhi: Penguin Books India (p) Ltd
15. Lawton, D. (1981). 'Foundations for the Social Studies' , In Mehlinger, H. D. (Ed.). UNESCO Handbook for the Teaching of Social Studies. pp. 3658. London: Croom Helm
16. Leming, J. (2003). 'Ignorant Activists: Social Change, "Higher Order Thinking," and the Failure of Social Studies', in Leming, J., Ellington, L. and Porter, K. (Eds.). Where Did Social Studies Go Wrong? pp. 124142. Washington, DC: Thomas B. Fordham Foundation
17. Marlena, A. (2003). 'The Politics of Portrayal: A Study of the Changing Depictions of Religious Communities and Practices in Indian History Textbooks'. MA Dissertation: Oxford
18. Menon, N. (2010). History, Truth and Nation: Contemporary Debates on Education in India in Vinayak, A. & Bhargava, R. (Eds.). Understanding Contemporary India: Critical Perspectives. New Delhi: Orient Blackswan
19. National Council for Educational Research and Training (NCERT). (1975). The Curriculum for Ten Year School: A Framework. New Delhi: NCERT
20. National Council for Educational Research and Training (NCERT). (1988). National Curriculum for Elementary and Secondary Education: A Framework (NCESE). New Delhi: NCERT
21. National Council for Educational Research and Training (NCERT). (2000). National Curriculum Framework for School Education. New Delhi: NCERT

22. National Council for Educational Research and Training (NCERT). (2005). National Curriculum Framework, 2005. New Delhi
23. National Council for Educational Research and Training (NCERT). (2006). Position Paper: Teaching of Social Sciences. New Delhi: NCERT
24. Nirantar. (2009) Textbook Regimes: A Feminist Critique of Nation and Identity. New Delhi: Nirantar
25. United Nations Scientifi c, Educational and Cultural Organization (UNESCO). (1954). Round Table Conference on the Teaching of the Social Sciences in South Asia: Papers and Proceedings of the Meeting' February 1519. New Delhi: UNESCO
26. Vakil, C.N. (1954). The Unity of the Social Sciences in Round Table Conference on the Teaching of the Social Sciences in South Asia: Papers and Proceedings of the Meeting. 1519 February 1954, New Delhi: UNESCO, pp 7281
27. Wesley, E. B. (1937). Teaching the Social Studies. New York: Heath and Company
28. Wishon, P. M. et.al. (1998). Curriculum for the Primary Years: An Integrative Approach. UK: Prentice Hall
29. Wronski, S. P. (1981). 'Social Studies Around the World'. In Mehlinger, H. D. (Ed.). (1981) UNESCO Handbook for the Learning of Social Studies. London,UNESCO, Paris: Croom Helm

---

पूनम बत्रा *दिल्ली के मौलाना आजाद सेन्टर फॉर एलमेन्टरी एण्ड सोशल एजुकेशन (एमएसीईएसई), सेन्ट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ ऐजुकेशन (सीआईई) में एलमेन्टरी एजुकेशन की प्राध्यापक हैं। उनकी विशेष रुचि के कार्यक्षेत्र हैं : शिक्षा में सार्वजनिक नीति, प्राथमिक शिक्षा पाठ्यक्रम तथा शिक्षण, शिक्षक–शिक्षा, शिक्षा का विकासात्मक व सामाजिक मनोविज्ञान, तथा लिंग–आधारित अध्ययन। उन्होंने सेज द्वारा 2010 में प्रकाशित एक ग्रन्थ सोशल साइंस लर्निंग इन स्कूल्स : पर्सपैक्टिव एण्ड चैलेंजेज़ का सम्पादन किया है। वर्तमान में वे जवाहरलाल नेहरू फैलो के रूप में शिक्षक–शिक्षा एवं सामाजिक परिवर्तन विषय पर शोध कर रही हैं। उनसे इस batrapoonam@yahoo.com ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*